ckS) fHk{kqvksa ,oa tSu riLoh;ksa esa ekal Hk{k.k

Jhidk'k

ikphu bfrgkl lLdfr ,o iqjkrRo foHkkx] jke lod ;kno LukRdkRrj egkfo|ky;] pnkSyh ckjkcadh] Hkkjr

सभ्यता के प्रारम्भ, प्रागैतिहासिक काल में मानव पूर्णतया मांसभक्षी था जिसका प्रमाण उस समय के प्राप्त पाशाण हथियार व उनसे कटी हुई हड्डियां हैं। विकास के साथ ही मानव ने कृषि करना सीखा और अपने भोजन में विभिन्न प्रकार के अन्न, शाक, सब्जी, कन्द–मूल फल को स्थान दिया। दीर्घकालीन अनुभव व शिक्षा हासिल करके उचित–अनुचित का ज्ञान प्राप्त किया। अब वह अपने आहार के लिये पूर्णतया पशुओं के मांस पर ही निर्भर नहीं था, उसके पास जरूरत से भी ज्यादा खाद्य सामग्री एकत्रित होने लगी थी। अब उसे अपनी उदरपूर्ति के लिए पशु–पक्षीयों को मारने की आवष्यकता नही थीं किन्तु फिर भी मानव ने अपने आहार से पशुओं के मांस को नहीं हटाया। सामान्य जन–मानस तो दूर की बात थी, वो वर्ग जो अहिंसा (जीव हत्या पाप) की बात करता था जिसमें ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, ऋषि-मुनि शाामिल थे वह भी अपने आप को मांसाहार से दूर नही रख सके। अहिंसा का उपदेश व समर्थन करने के बावजूद वे कोई न कोई कारण बताकर मांसाहार करते रहे। भारत के प्राचीन साहित्यिक साक्ष्यों में इसकी पुष्टि भी होती है। प्रस्तुत इस लेख में बौद्ध जातक एवं जैन साहित्य उस युग में समाज के साथ बौद्ध व जैन साधुओं में प्रचलित मांसाहार पर प्रकाश डालते हैं।

बौद्ध जातकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय भारतीय समाज में दो प्रकार के लोग होते थे। एक शकाहारी और दूसरा मां. साहारी। महावीर स्वामी ने अहिंसा पर जितना बल दिया उतना गौतम बुद्ध ने नहीं। फिर भी समाज का सामान्य जन अहिंसामार्गी होकर भी मांसाहार से परहेज नहीं करता था। केशव जातक[1] से ज्ञात होता है कि मछली और मांस के साथ चावल खाया जाता था। सुपत्त जातक[2] में उल्लेख मिलता है कि बिम्बा देवी का स्वागत बौद्ध भिक्षु सारिपुत्र ने मछली, भात और घी से किया था। इस उल्लेख से यह बात पता चलती है कि तत्कालीन समाज के उच्च वर्ग में मछली, भात और घी का प्रचलन था।

जातकों में मांस बेचने की दुकानों तथा मांसाहार का उल्लेख मिलता है।[3] वाराणसी नगर के बाहर मृग (हिरण) के मांस की दुकानें थी।[4] इससे ज्ञात होता है कि इस समय लोग हिरण का मांस भी खाते थे। ठेले व गाड़ी पर लादकर भी मांस घूम–घूम कर बेचा जाता था। मांस जातक में उल्लिखित है कि एक–एक गाड़ी मांस लादकर लोग बाहर से नगर की ओर मांस बेचने के लिए आते थे।[5] संभवतः मांस की दुकानें नगरों के बाहर ही हुआ करती थी। हिरण का मांस विशेष रूप से पसन्द किया जाता था उसके लिए अलग दुकानें होती थी।[6]

जातक कथाओं में ज्ञात होता है कि उत्सव तथा विभिन्न प्रकार के समारोहों के समय लोगों को मांस खिलाने के लिए शूकर (सुअर) का वध किया जाता था।[7] निश्चित रूप से उस समय सुअर के मांस का विशेष महत्व था। जातकों के युग में लोग मांस खाना पसन्द करते थे। इस समय गृहस्थ के साथ–साथ भिक्षुओं द्वारा भी मांस खाने का उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय[8] में शूकर मांस को उत्तम मानते हुऐ उत्तम दक्षिणा सामग्री कहा गया है। महावग्ग[9] से ज्ञात होता है कि बौद्ध भिक्षु भिक्षा में प्राप्त मांस को ग्रहण करते थे। महात्मा बुद्ध ने स्वयं पावा के चुंद कर्मार के पुत्र के घर में शूकर मार्द्दव (सुअर का मांस) ग्रहण किया था।[10] जिसके कारण उन्हें अतिसार हो गया था। जो उनकी मृत्यु का करण भी बना। बुद्ध ने मांस ग्रहण को पाप नहीं माना, बल्कि जीव हिंसा अर्थात स्वयं के द्वारा की गई जीव हिंसा को पाप माना है।

जातकों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण श्राद्ध के अवसर पर बड़े चाव से मांस खाते थे।[11] मनुस्मृति में भी जातकों से मिलती हुई बातों का वर्णन मिलता है। मनु के अनुसार श्राद्ध में ब्राह्मणों को अन्य पदार्थों के साथ मांस भी खाने के लिए दिया जाता था। श्राद्ध में प्राप्त मांस खाने के लिए मनु का निर्देश था, कि ऐसा न करने वाले को इक्कीस जन्म तक पशु योनी में जन्म लेना पड़ेगा[12] ब्राह्मणों द्वारा मांस खाये जाने का वर्णन मतकभत्त जातक[13] में भी मिलता है। जिसमें एक ब्राह्मण द्वारा अपने पितरों को श्राद्ध अर्पण हेतु भेड़ का मांस चढ़ाने का उल्लेख हुआ है। ब्राह्मण धम्मिक सुत्त[14] में ब्राह्मणों द्वारा गोहत्या कराने का ज्ञान होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय के समाज में मांस लोगों में काफी प्रिय भोजन था। कर्मकांडी ब्राह्मण समुदाय भी उससे अपने को अलग नहीं रख सका सम्भवतः इसीलिये लोगों में मांस की लोक प्रियता के कारण महात्मा बुद्ध ने भी इसको पूर्णतया प्रतिबन्धित नही किया। हालांकि ब्राह्मणों में मांसाहर नयी बात नहीं थी। वेदों में ब्राह्मणों द्वारा मांस भक्षण की परम्परा का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में अग्नि के लिए घोड़ो, बैलों, बांझ गायों एवं भेड़ो की बलि देने की चर्चा हुई है। देवराज इन्द्र के लिए बैल का मांस पकाये जाने का भी वेदों में वर्णन है। जिसकी पुष्टि अशोक के शिलालेख से भी होती है कि प्रतिदिन हजारों प्राणियों का वध होता था।

महात्मा बुद्ध भी मांस खाते हैं, इस बात को लेकर एक बार जैन साधुओं ने काफी विरोध किया था। तेलोवाद्द जातक[15] से ज्ञात होता है कि सिंह सेनापति ने बुद्ध को भोजन के लिए निमन्त्रित किया और मांस युक्त भोजन कराया। जैन साधुओं को जब इसका पता चला

तो उन्होंने यह कहकर इसका विरोध किया कि तथागत जानते हुये भी अपने लिए बनाये गये मांस को खाते हैं। इस विषय में बौद्ध भिक्षुओं का तर्क था कि ''हम खाने की वस्तुऐं मांगते नहीं हैं। यदि गृहस्थ मांस पकाता है, तो दोष–पाप उसके सिर पर है, हमारे लिए उसने जीवन वध नही किया, तो उसका पाप हमारे सिर पर नहीं पडेगा।''

पशुओं के अतिरिक्त लोग पक्षीयों का मांस भी खाते थे। जिनमें मुर्गा, कबूतर, मोर, बटेर, हंस, क्रोंच, कौआ आदि प्रमुख थे। सम्मोदन जातक[16] से पता चलता है कि षिकारी और बहेलिया अधिकतर जंगलों में छाये रहते थे। पक्षीयों को पकड़ने के लिये वृक्षों पर जाल भी फैलाते थे। मोर जातक में मोर के षिकार का भी उल्लेख है। इसमें मोरनी को सिखलाया जाता था कि वह चुटकी बजाने पर नाचे, जिससे मोर मोरनी के लालच में आते थे और शिकारी के बिछाये जाल में फंस जाते थे।[17] आमगन्ध सुत्त[18] में महात्मा बुद्ध को पक्षीयों का मांस खाते हुऐ दिखाया गया है। मुर्गे का मांस खाना भी लोग पसन्द करते थे। सिरि जातक[19] में मुर्गे के मांस खाने का उल्लेख है जिसके अनुसार लोग भात के साथ मुर्गे का मांस खाते थे। रोमक जातक[20] में एक रोचक प्रसंग मिलता है कि एक साधू जंगल में रहता था, ग्रामवासियों ने उसे कबूतर का मांस पकाकर दिया, मांस खाकर साधू अत्यन्त प्रसन्न हुआ। साधू की गुफा के पास अनेक कबूतर रहते थे। साधु ने चावल, घी, दही, जीरा, मिर्च मंगाकर रखा और कबूतरों का शिकार करने की धुन में लग गया। सर्प व गोह भी खाये जाते थे। गोह (गोध) अधिकतर जंगल में रहने वाले तपस्वियों का आहार बनती थी। पक्कगोध जातक[21] में उल्लिखित है कि एक राजपुत्र और उसकी पत्नी रास्ते में रूके तो शिकारी ने गोह का पका हुआ मांस उन्हे खाने को दिया जिसे राजपुत्र ने पत्नी को न देकर चतुराई से सारा मांस स्वयं खा लिया था। तितिर जातक में एक निर्ग्रन्थ साधु की कथा का वर्णन है, जो गोह के साथ–साथ गाय और उसके बछड़े को भी मारकर खा गया था।[22]

यद्यपि जैन मांस नही खाते थे किन्तु जातक कथाओं में जैनों के मांस खाने का उल्लेख मिलता हैं। सिगाल जातक में उल्लिखित है कि यज्ञ, देवता की पूजा और भिक्षु सेवा आदि सभी अवसरों पर मांस का प्रयोग होता था।[23] बच्छशूकर जातक,[24] से ज्ञात होता है कि एक तपस्वी ने शिकार करने के लिए शेर पाला था। वह षेर षिकार पकड़कर तपस्वी के पास लाता था और दोनो साथ मिल–बैठकर मांस खाते थे। एक बार सुअरों ने संगठित होकर उस पालतू शेर और उसके स्वामी तपस्वी दोनों को मार डाला। महासोम जातक[25] में महासोम राजा नरभक्षी था, वह अपनी प्रजाजनों को मार–मार कर खा जाता था।

इससे (इन उदाहरणों से) स्पष्ट है कि जातक काल में मांस खाने की चाह बहुत बढ़ गई थी। पशु पक्षीयों के अतिरिक्त मनुष्यों तक का मांस खाया जाता था, किन्तु मनुष्य का मांस खाये जाने के उदाहरण कम ही है।

जैन आगम ग्रंथों मे भोज्य पदार्थों में दूध–दही, मक्खन घी, तेल, मधु, मदिरा, गुड़, शष्कुली (लूची), राब भूने हुए गेहूँ से खाद्य पदार्थ (पूय) और श्रीखण्ड के नामों के साथ मांस का उल्लेख भी मिलता है।[26] तित्थोगाली प्रकीर्णक से यह ज्ञात होता है कि लोगों के भोजन में सड़ी–गली मछली और अन्य चीजें भी थी।[27] इसी प्रकीर्णक में यह उल्लेख मिलता है कि लोगों के खाने के लिये कुछ भी नही रहेगा, वे नदियों से मछली पकड़कर उसे अपना भोजन बनाऐंगे।[28] यद्यपि जैन साधुओं के लिये मांसाहार पूर्णतया प्रतिबन्धित है परन्तु आचारांगसूत्र द्वितीय, श्रुत स्कन्द की टीका (11.4.247) में साधुओं को दिये जाने वाले भिक्षापिंड में दूध, दही, मक्खन, घी, गुड़, तिल और मधु के साथ मद्य और मांस का भी उल्लेख मिलता है। टीकाकार ने लिखा है कि उसकी व्याख्या छेदसूत्र की अपेक्षा करनी चाहिए अथवा हो सकता है कि लालची साधू प्रसाद के रूप में मद्य–मांस का भक्षण करना चाहे, इसलिये भिक्षा पिण्ड में इन्हे भी शामिल किया हो।[29] आचारांग टीका द्वितीय श्रुतस्कन्द (1.9.274) में कहा गया है कि मांस या मछली को पकता देखकर साधू को उसकी याचना का विधान नही है पर रोग आदि की स्थिति में यह लागू नहीं होता। ऐसी हालत में यदि उसको भिक्षा पात्र में बहुत हड्डी वाला मांस डाल दे तो, उसे केवल मांस ही लेना चाहिए हड्डी नहीं। यदि इस पर भी कोई हड्डी डाल दे तो उसे एकान्त में ले जाकर मांस खाकर हड्डी को फेंक देना चाहिए।

अन्य समकालीन जैन साहित्य को देखा जाये तो उनमें मांस भक्षण का उल्लेख काफी मिलता है। mikid n'kk के आठवें अध्याय में राजगृह के श्रमणोपासक महाषतक को पत्नी रेवती के मांस भक्षण का उल्लेख है। इसी तरह mRrjk/;;u l= में भी अरिष्टनेमि की कथा आती है, जब वे अपनी बारात लेकर राजा उग्रसेन की कन्या राजामती को ब्याहने जा रहे थे तो रास्ते में पशुओं के करूण स्वर सुनकर अपने सारथी से इसके बारें में पूछा। सारथी के यह कहने पर कि ये सब पशु आपके बरातियों को खिलाने के लिये मारे जाने वाले हैं, इससे खिन्न होकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया तथा संसार का त्याग कर उन्होंने श्रमण शिक्षा ग्रहण कर ली।[30]

वानप्रस्थी तापसों के मांसाहार के विषय में सचित्र औपपातिक सूत्र में गंगा किनारे रहने वाले वानप्रस्थी मृग्लुब्धक[31] (व्याधों की तरह हिरणों का मांस खाकर जीवन चलाने वाले) एवं हस्तितापस[32] (हाथी का वधकर उसका मांस खाकर बहुत समय व्यतीत करने वाले तापसों का उल्लेख मिलता है)। जिसमें हस्तितापस तपस्वीयों का यह मानना है कि वे एक हाथी को एक वर्श या छः महीने में मारकर केवल एक जीव का वध करते हैं, अन्य जीवों को मारने से बच जाते हैं।

l=dkx Vhdk के अभिमतानुसार हस्तितापस बौद्ध भिक्षु थे। आर्दक कुमार का हस्तितापसों के साथ बहुत लम्बा संवाद सूत्रकृतांग में मिलता है। yfyrfoLrj में हस्तिवृत तापसों का उल्लेख

है। egkoXx में भी दुर्भिक्ष के समय हाथी आदि के मांस खाये जाने का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार बौद्ध भिक्षुओं व जैन साधुओं के मांस भक्षण के बारे में दिये गये साहित्यिक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज का बौद्ध भिक्षु व जैन तपस्वी वर्ग भी मांसाहार से अपने आप को अलग नही रख सका। सम्भव है कि दिये गये अनेक साक्ष्यों में कुछ एक में जैन तपस्वीयों के बारे में मित्थ्या जानकारी दी गई हो किन्तु बहुसंख्यक जातकों में इनके मांस भक्षण पर अनेक कथाऐं मिलती हैं। कथायें समाज का आईना होती हैं अर्थात समाज में जो हो रहा होता है वह कथा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा कि ब्राम्हण, बौद्ध, जैन तपस्वी अहिंसा की बाते करने के बावजूद मांस भक्षण की अपनी लालसा को दूर नहीं रख सके और मांस भक्षण करते रहे, चाहे वह भिक्षा के रूप में ही क्यों न रहा हो।

lanHk lph

[1]. केशव जातक, 23

[2]. सुपत्त जातक, 292

[3]. थेर गाथा, 166

[4]. जातक, 6.23

[5]. मांस जातक, 315

[6]. वारूणी जातक, 47

[7]. इलिसा जातक, 78

[8]. अंगुत्तर निकाय, 3 प॰20 49

[9]. महावग्ग, 6.23, पृ0 10–15

[10]. महापरिनिब्बान सुत्त, 8.5, दीघ निकाय, 2 पृ0 127.

[11]. साकेत जातक, 68.

[12]. मनुस्मृति, 5.35

[13]. मतक भत्त जातक, 19

[14]. उदान अट्ठ कथा, पृ0 76

[15]. तेलोवाद्द जातक, 246

[16]. सम्मोदन जातक, 33

[17]. मोर जातक, 286.

[18]. सुत्तनिपात, पृ0 60

[19]. सिरिजातक, 284

[20]. रोमक जातक, 277

[21]. पक्कगोध जातक, 333

[22]. तितिर जातक, 338

[23]. सिगाल जातक, 113, स्ट्रैवो 16, 1.59, केशव जातक, 216

[24]. बच्छ सूकर जातक, 492

[25]. महासुत्त सोम जातक, 537.

[26]. जगदीश चन्द्र जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ0193–194।

[27]. तित्थोगाली प्रकीर्णक गाथा, पृ0 957, 959।

[28]. तित्थोगाली प्रकीर्णक गाथा, पृ0 651, 659।

[29]. जगदीश चन्द्र जैन, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ0 203।

[30]. उत्तराध्ययन सूत्र, 22.14।

[31]. श्री अमर मुनि, सचित्र औपपातिक सूत्र, पदमा प्रकाशन दिल्ली 2003, उपपात वर्णन सूत्र– 74, पृ0 231।

[32]. उपरोक्तानुसार– 74, पृ0 231।

Shriprakash received his B.A. Degree in (A.I.H., Political Science & Education) from Lucknow Christian College U.P. India in 1996. The M.A. Degree in Ancient Indian History from Lucknow University, U.P. in 1998 & Cleared UGC-NET, New Delhi in 1999. At present time, he is Teaching as Assistant Professor at Ram Sewak Yadav P.G. College in Chandauli Barabanki Utter Pradesh India and submitted Ph.D in "Uttar Pradesh me Jain Dharam ki Sanskratik Den : Ek addhyayan" in Jan 2014.